पहली पंक्ति के पीछे

हरीचरन प्रकाश

पहली पंक्ति के पीछे

'अब्बू, धोती नहीं पहनने का', यह बात मौलाबख्श ने अपने बाप खुदाबख्श से कही। खुदाबख्श के लिए यह बात कुछ ऑय-बॉय-सी थी और उन्होंने उसे आई-गई के खाते में डाल दिया। लेकिन मुझे यह बात कसकर याद है, एकदम शुद्ध वाक्य रूप में। बहुत दिन से यह वाक्य मेरे पीछे पड़ा है। यह कहानी का आवश्यक हिस्सा नहीं बन पा रहा है और न उसमें कुछ जोड़ता है। यह कोई आकर्षक अर्थगुंफित बयान भी नहीं है, फिर भी मैं इसे हिला-डुलाकर कुछ हासिल करना चाहता हूँ।

दिनांक : **3** दिसंबर, **1971**

दिन धुँधला रहा था, शुरुआती जाड़े के दिन। माँ अँगीठी जलाने की तैयारी कर रही थीं, जब मैं घर पहुँचा। आदतन रेडियो खोला तो लड़ाई की खबरें सुनाई पड़ीं। पाकिस्तानी हवाई जहाजों ने भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर हमले किए और हम मुँहतोड़ जवाबी कार्यवाही कर रहे हैं।

सुनते ही कलेजा सन्न-सन्न करता हुआ किलकारी मारने लगा। मैं बाहरी छत की ओर भागा। म्यूनिस्पैल्टी के नल पर बिरजा महरिन पानी भर रही थी। जिनके लिए यह खबर व्यर्थ थी। मैं खड़बड़ाते हुए सीढ़ियाँ उतरा और पेशकार चाचा के घर में घुस गया। चाचा रिटायर हो चुके थे। खबर सुनते ही उनकी आँखें चमक उठी, 'अब मजा आएगा रेडियो में, कहो मुन्नन। लेकिन दुश्मन को कम मत जानो, और भइया, होशिरी से आओ-जाओ।'

'हाँ', कहते हुए मैं बाहर की ओर निकल आया। मैं इस खबर को आग की तरह फैलाना चाहता था। खबरों के प्रति मैं बहुत कर्तव्यपरायण हूँ। अनुसंधानी आकुलता से फटते चेहरे को किसी तरह सिए हुए मैं धीर-गंभीर हो देहावसान की खबरें सबसे पहले देता था, आज तो खैर जश्न ही था। मैं मुदित मन-आनन इलायची बाँट रहा था।

मोहल्ला बहुत मिला-जुला सा बसा था। मोटे तौर पर साठ-चालीस के अनुपात में हिंदू-मुसलमान रहते थे। पूर्व-पश्चिम में दो छोरों पर हिंदू और मुसलमान आबादी थोड़ा अलग और घनी हो गई थी, पर बीच में एक-दूसरे से घर मिले-जुले थे। हिंदू छोर के बाहरी हिस्से में खटिक और मुसलमानी छोर के बाहरी हिस्से में कसाई रहते थे। यह मोहल्ला वकील, मास्टर, बाबू, ओवरसियर और कुछ दुकानदार पेशा लोगों से बसा था।

छह-सात घरों तक मेरा हौसला कम होने लगा। लोगों में उस उत्साह के दर्शन नहीं हुए, जिसकी मुझे आशा थी। थोड़ा हतोत्साहित करने वाली बात यह थी कि कुछ लोगों को युद्ध की खबर पहले हो गई थी। मैं तिराहे की ओर निकल गया जहाँ थोड़ा-बहुत मजमा हमेशा जुटा रहता था। लोग आते-जाते, खड़े-बैठे युद्ध की बातें कर रहे थे।

उनकी जिंदगियाँ यकायक बामकसद और बामजा हो गई थीं। पुत्तन चक्की वाले का लड़का लाउडस्पीकर ले आया और देशभक्तिपूर्ण फिल्मी गाने बजाने लगा। मैं देश के लिए दीवाना होने लगा। मेरी आँखों में भावाश्रु झिलमिलाने लगे। हृत्पिंड ऊर्ध्वगामी हो खोपड़ी में घुसने लगा। अगल-बगल दस-पाँच कदमों के फासले पर दिखने वाले तमाम लोग जिनके नाम मैं जानता था, जो चरही के पास या शीतलामाई के मंदिर के पीछे या भड़भूजे के भाड़ के पहले या खीर वाली गली में घुसते ही बाबाएँ हाथ के तीसरे मकान में रहते थे, इस एक क्षण वे सब मुझे आसेतुहिमाचलवासी भारतवासी नजर आने लगे। मेरी निगाह में इन तरह-तरह के रूपरंगियों का मजमा एक बड़ी अकेली आकृति धारण कर चुका था, उठा हुआ, जागा हुआ बोधयुक्त भारतवर्ष। इस क्षण हमारे पास एक घोष होना चाहिए। मैं सोचने लगा कि शायद कोई आदमी पहल करे और भारतमाता की जयकार करे, कि एक कोने से निनाद उठा -

'हर-हर - बम-बम, हर-हर - बम-बम'

देखते-देखते देसी के ठेके के सामने बैठने वाला पागल जो बहुत ही नुमाइशी ढंग से नंगा रहता था, ब्रह्मांड हथेली पर उछालते हुए मैदान में आ गया और जोर-जोर से धर्मघोष करने लगा। लोगों की हँसी फूट पड़ी और वीररस की चाशनी बिगड़ गई। नुक्कड़ के नौनिहाल उसे घेरकर नाचने लगे।

घर लौटकर मैं रेडियो में जुट गया। शार्टवेव, मीडियम वेव, आकाशवाणी तथा बी.बी.सी. के बीच ग्राफ बनाते हुऐ मैंने रात के ग्यारह बजा दिए। वह बड़ी उल्लसित और उत्कंठित रात्रि थी। मुझे एक झटपट-सबेरे का इंतजार था।

सबरे अखबारों के शीर्षक पन्नों के बाहर जाते दिखाई पड़ रहे थे। घूम-बूम मैमनसिंग, कुमिल्ला, उड़ी, छंब लाहौर, घूम-बूम। आज कालेज में क्लास की शुरुआत बड़े प्रेरणास्पद तरीके से हुई। जनरल इंग्लिश के सर ने ब्लैक बोर्ड पर लिखा, 'आस्क नाट व्हाट नेशन कैन डू फार यू, आस्क व्हाट यू कैन डू फार नेशन'। प्रिंसिपल साहब हर कक्षा में गए। उन्होंने बताया कि जो सीमा पर गोली-बंदूक नहीं चला रहे हैं, वे भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। हम तो रक्षा की द्वितीय पंक्ति में हैं, हमारे ही भरोसे प्रथम पंक्ति लड़ती है। हम सबको अनुशासन में रहकर अपने कर्तव्य का घोर पालन करना है।

आज किसी का मन न तो पढ़ने में लगा और न पढ़ाने में। हम लोग खबरों को मिल-बाँटकर खा रहे थे, चबा रहे थे, चूस रहे थे।

कालेज में लौटने के बाद मैं महमूद के घर गया। महमूद से मेरी खूब पटती थी। वह भी मेरे ही तरीके का ज्ञानी था, यानी अखबारों और पत्रिकाओं का घनघोर पाठक और युद्धक-प्रवचक।

दरवाजे पर खड़े होकर मैंने महमूद को आवाज दी। वह हँसता हुआ निकला और फिर तुरंत गंभीर हो गया। उसने सूचना दी, 'दादा की तबीयत कुछ ज्यादा बिगड़ गई है, अब्बू आ जाबाएँ, तो अस्पताल ले जाया जाए। कचहरी खबर भिजवाई है।'

महमूद के दादा को अकरम दरोगा के नाम से पुकारा जाता था। वह बेहतरीन पुराने दिनों में म्युनिस्पैल्टी के सेनेट्री इन्सपेक्टर हुआ करते थे। तब इस पद को सफाई दरोगा के नाम से पुकारते थे। वह शहर के मेहतरों के बड़े धाकड़ हाकिम थे अैर लोग यह मानते थे कि दरोगाजी के रिटायर होने के बाद मोहल्ला तो क्या, पूरा शहर गंदा हो गया है। लोग मुँह पर उनकी तारीफ करते तो वह कहते, 'भाई, मैं जूते को पहनना जानता हूँ।'

यह अकरम दरोगा पिछले दो बरस से गंभीर रूप से बीमार थे। कबड्डी-कबड्डी करती हुई मौत उनके पाले में दाखिल होती और बिना छुए लौट जाती। इस खेल से घरवाले कुछ आजिज हो चले थे और सोचते थे कि अल्लाह मियाँ प्यार में इतनी कोताही क्यों बरत रहे हैं। अरे भाई, या तो ठीक हो जाए या जा बाएँ। इस बात को लेकर दोस्तों में मजाक चला करता। मैंने महमूद को आशीर्वाद-सा दिया, 'डोंट वरी, ऊपर वाला चाहेगा, तो फिर भले-चगें वापस होंगे।'

महमूद ने मुस्कराते हुए मेरी पीठ पर एक दोस्ताना मुक्का दिया। मैंने पूछा, 'क्या खबर है, कुछ आगे पता चला।'

'क्या**?**'

'अरे लड़ाई।'

'कहाँ, मुझे फुर्सत ही नहीं मिली कुछ जानने की। अरे यह सब पालिटीशियन्स का टूर्नामेंट है यार, इसमें कुछ रखा नहीं है।'

मुझे एकाएक कोई जवाब नहीं सूझा तो मैंने गहरी निगाहों से उसे देखा।

'अब लड़ाई की कोई कमेंट्री तो आ नहीं रही है।' महमूद ने मेरी निगाहों का जवाब नहीं दिया।

'फिर भी... अच्छा, अस्पताल में मेरी कोई जरूरत हो तो बताना। चलता हूँ।'

मूनलाइट होटल बीच चौक में था और एक मुसलमान का था। लेकिन वह एक मुस्लिम होटल नहीं था यानी बकरे और मुर्गे के अलावा किसी भी जीवधारी का व्यंजन निषिद्ध था। वहाँ केवल उर्दू अखबार आते थे, तब भी खाने के शौकीन हिंदू बहुसंख्या में आते। इनमें हमारे मोहल्ले के मारवाड़ी जिनके घरों में अंडा तक भी नहीं आया, अग्रणी थे। पैसा भी उन्हीं के पास था। अक्सर हम लोग ऐसी ही किसी जेब में बैठकर मूनलाइट जाते। वहाँ चर्चा मुख्यतः राजनीति और मौसमी खेलों पर होती। आज मुझे वहाँ पहुँचने की बेताबी थी। ब्लैक आउट जमकर मनाया जा रहा था। काउंटर पर और इक्का-दुक्का मेजों पर मोमबत्तियाँ जल रही थीं। इर्द-गिर्द कुछ अँधेरे-अँधेरे से लोग बैठे थे। एक चीज बहुत साफ दिखाई पड़ रही थी। काउंटर के पीछे दो मोमबत्तियों के बीच तस्वीर की तरह तख्ती का एक टुकड़ा लटका था। उस पर हरी स्याही में उर्दू और हिंदी में लिखा था, 'यहाँ पालिटिक्स पर बात करना मना है।'

लोग खामोश थे और क्रिकेट की बात भी नहीं कर रहे थे। मैंने सामने बैठे हुए मनोहरलाल-मोतीलाल एंड सन्स के एक पुत्र से पूछा। 'क्या बात है, क्यों मुर्दनी छाई है।'

उसने नासापुट सिकोड़े और बहुत दबी अवाज में किया स्फीत फूत्कार भयंकर - 'सालों का बाप मर गया है न। आज से जो यहाँ बिरयानी खाने आऊँ, तो समझ लो गऊ मांस खाया।'

मैंने होटल पर एक समग्र दृष्टिपात किया और मन पवित्र क्रोध से भरने लगा। धीरे से मैं भी उठ गया और बाहर निकलकर आने-जाने वाले लोगों के चेहरे से पहचान करने लगा कि उनमें कौन हिंदू है और कौन मुसलमान। यह एक अवसादपूर्ण रात्रि थी।

अगले दिन कालेज जाने पर पता चला कि हम लोगों को श्रमदान करके एक खाईं खोदनी है जो हवाई हमलों से हमारा बचाव करेगी। पूरा दिन इसी में बीत गया कि खाईं मैदान के किस हिस्से में बनाई जाएगी। आखिरकार धूप खत्म होते-होते चूने से निशानदेही कर ही दी गई। रात्रि में खूब बढ़िया-बढ़िया खबरें सुनने को मिली। ईस्टर्न सेक्टर में तो हमारा घोड़ा निर्द्वंद्व विचरण कर रहा था।

कालेज में खाईं-खुदाई का काम अपार उत्साह के साथ आरंभ हुआ। देहात से आने वाले छात्र इस काम में अग्रणी थे। मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैंने या किसी और ने इस बात की फिक्र की या नहीं कि मुसलमान लड़के कैसे खुदाई कर रहे हैं। तीन दिन में खाईं खुदकर तैयार हो गई। अब बम-वर्षकों का इंतजार था, जो कि कभी दिखाई नहीं पड़े। पाकिस्तान की हालत वाकई पतली थी।

अगले कुछ दिन बड़े गहमा-गहमी में बीते। खबर उत्साहवर्धक और अफवाहें सनसनीखेज। तीन जगहों से ट्रांसमीटर बरामद होने की बात हवा में फड़फड़ा रही थी। डॉक्टर नसीम अहमद को मिलेट्री वाले पकड़कर ले गए, ऐसा पक्की तौर पर कहा जा रहा था। एक दिन मैंने अपने कानों से वह सुना, जो मैं सुनना नहीं चाहता था। मोहल्ले के पश्चिमी छोर पर निसार की दुकान थी। वहाँ तेल, आटा, चावल, मसाला, मेवा, बटन, कंघी, रिबन, चिमटी और अल्लम-गल्लम थोड़ा-थोड़ा सब मिलता था। दुकान पर हमेशा मजे की गाहकी रहती। छोट-छोटे लड़के-लड़कियाँ आते और सौदा खरीदते।

'ऐ निसार, दुई आने का फीता दे देव।'

'ऐ निसार, चवन्नी का गोस-मसाला, चवन्नी का डालडा और अठन्नी का तेल देव और यह लेव एक रुपया।'

मेरा आना-जाना कभी-कभार उस दुकान की तरफ से होता था। मेरे आगे दो छोटी लड़कियाँ पुड़ियाँ और कटोरी लिए जा रही थीं। उनमें से एक कह रही थी, 'मुसलमानों की मदद के लिए अमरीका ने जहाज भेजा है, अब हिंदू लोगों को पता चलेगा।'

मैं वहीं ठिठकर खड़ा हो गया। अच्छा तो यह प्रतिक्रिया है। अमरीकी नौसैनिक बेड़े के आने की। 'आयँ, अब मेरा कोई दोष नहीं है।' मैंने धर्मनिरपेक्ष रहने की पूरी कोशिश की, लेकिन यह मुसलमान हैं ही ऐसे। मेरा मन एक विराट कालगह्वर की कल्पना करने लगा, जिसमें यह शीघ्र समा जाएँगे। चौदहवीं सदी हिजरी सन्। मैं आँखें खोले एक स्वप्निल इतिहास का सृजन करने लगा। स्टेज पर से पर्दा खिंचता और मैं देखता मोहम्मद गौरी दूसरी लड़ाई भी पृथ्वीराज चैहान से हार गया। पलटकर मेरी फौजें मक्का तक जाती और शिवलिंग की पूजा-अर्चना करतीं। राणाप्रताप के चेतक की टापें मुगले आजम के मत्थे पर पड़ रही थीं। मैं शिवाजी को तख्ते-ताऊस पर बैठा देख रहा था। मैं बिना म्यान की तलवार की तरह मचल रहा था।

रास्ते में महमूद से भेंट हुई। उसने पूछा, 'कहाँ?'

'मैंने तलवार लहराई और पूछा, 'ढाका पर कब्जा हो जाएगा?'

'पता नहीं यार, एक्सपर्ट तो तुम हो।'

मैंने पूरब से पश्चिम की ओर कावा काटा, 'सुना है लाहौर तक पहुँच गई है हमारी आर्मी।'

'बड़ी खुशी की बात है, लेकिन सियासत भाई-भाई को लड़वा रही है। इनकी पीठ पर रूस है, उनकी पीठ पर अमेरिका। अच्छा अब चल रहा हूँ। दादा के चक्कर में समय से रोटी नहीं खा पा रहा हूँ।'

'रोटी', मैंने तीव्रभेदक दृष्टि से उसकी ओर देखा। स्वदेश के लिए 'इनकी' शब्द सुनते ही मेरी धार तेज हो गई थी। भला बताओ, फिर तुम्हारी क्या हुई।

'हाँ, रोटी क्यों।'

'उल्टे तवे की या सीधे।' मैंने खून देखने से मुँह चुरा लिया। मैं खून देख ही नहीं पाता। मुझमें मुरव्वत है।

तेज चलते हुए मैं सड़क पर आ गया। चुपचाप अपने काम में लगे बहुत सारे लोगों की बेगानगी मुझे अखरने लगी। यह लोग हमारे नहीं हैं, हमारे साथ नहीं हैं। देशभक्ति मुझे बेचैन करने लगी। पंचमांगी तत्वों पर काबू पाना होगा। घर लौटकर मैंने श्रोता बटोरे। कौन-कौन था। मुझे छोड़कर चार भाई-बहिन, पड़ोस की दो लड़कियाँ और छोटे मामाजी आज ही आए थे। मैंने तबलीगी अंदाज में भाषण शुरू किया। बाबूजी जो दफ्तर का अखबार घर पर लाकर शाम को आराम से पढ़ते थे, ने चश्मा उतारा और पूछा, 'आज का एडीटोरियल पढ़ा?

'मैंने पूछा, आज क्या बात है?' बाबूजी ने साश्चर्य मेरी ओर देखा। उनकी हिदायत थी कि पायोनियर अखबार का एडीटोरियल जरूर पढ़ना चाहिए, क्योंकि उससे अंग्रेजी सुधरती है। आजकल मुझे एडीटोरियल पढ़ने का खयाल ही न आता था। एक क्षण रुककर मैंने फिर भाषण आरंभ किया। मैं चाहता था कि अम्मा खासतौर पर मेरी बातों को सुनें। किसी मुसलमान मित्र, परिचित के आने पर शीशे और चीनी मिट्टी के बर्तन में खाना-पीना हो, इस बारे में अम्मा बहुत सजग थीं। इस प्रवृत्ति का मैं सिद्धांततः विरोधी था और चाहता था कि यह छुआछूत मेरे घर से जाए। लेकिन आज मेरे तेवर अनोखे थे। चिड़चिड़ाते हुए मैंने कहा, 'एक-एक को काटकर फेंक देना चाहिए।'

'अम्मा ने मेरी ओर देखा और बोली, 'यह लड़का तो लड़ाई के पीछे पागल हो रहा है। चुप होकर घर बैठो।'

मैंने कहा, 'तुम क्या जानो इन लोगों का रवैया, बहुत खतरनाक है।'

'किससे खतरा है, रऊफ घोसी से, जो दूध दे जाता है, या अपने दोस्त महमूद से, किसकी गर्दन काटोगे?' अम्मा ने पूछा।

'आँ' करता हुआ मैं गड़बड़ा गया। फिर बोला, 'तुम छुआछूत करती थीं और अब ऐसे बोल रही हो।'

'छूआछूत से क्या हुआ। हिंदू धरम में रहेंगे कि तुरक हो जाएँगे। बाकी ये सब खून खच्चर की बातें न करो। चुप्पे जाकर पढ़ो-लिखो।' अम्मा ने अंतिम वाक्य कहा।

मुझे लगा कि अम्मा डर गईं हैं। यह वाजिब भी था। हमारे घर के बारे में मशहूर था कि इन्होंने कभी मक्खी तक नहीं मारी और न किसी मक्खी ने इन्हें मारा। लेकिन नेशन से बढ़कर तो कोई बात नहीं है ना। ऐसी-तैसी में गए मदर-फादर। मैंने मुसलमानों के लिए क्या नहीं किया। मैं कोशिश करता था कि उनसे जवाहरलाल नेहरू वाली हिंदुस्तानी बोलूँ। मेरा उच्चारण कितना शुद्ध था, ज़ को ज नहीं ज़। ग को ग नहीं ग़। महान उर्दू शायरों के कितने शेर देवनागरी लिपि में रटे कोई हिसाब है। मेरे अंदर कभी कोई भेदभाव रहा ही नहीं। दिलीप कुमार को सबसे बढ़कर माना कि नहीं। मेरी भलमनसाहत देखिए, किसी मुसलमान से नमस्ते तक नहीं कहा, हमेशा आदाबअर्ज। एक बार तो बड़े का कबाब भी खा लिया। नतीजा क्या मिला। बेधड़क ये लोग रेडियो पाकिस्तान सुनते हैं। खाते यहाँ का हैं, और बजाते वहाँ का। ...मेरा प्रवचन बीच में ही रुक गया और घरेलू बातें शुरू हो गईं।

छोटे मामा की बरीक्षा चढ़ने वाली थी और नाना ने अम्मा को बुलाया था। नाना की औलादों में अम्मा सबसे बड़ी थीं, इसलिए नाना उन्हें छोटे-मोटे कामों में भी बुलवा लिया करते थे। अम्मा कहीं आते-जाते समय अपनी संदूकची के साथ एक संतान भी ले लिया करती थीं। इस बार मुझे जाना था, मेरा मुँह उतर गया। माना कि गाँव में ट्रांजिस्टर है, लेकिन सबेरे से आज-कल मैं जो चार अखबार पढ़ता हूँ, उनका क्या होगा। दोस्तों के बीच लड़ाई की चर्चा में जो आनंद है, वह कहाँ मिलेगा।

मैं दो साल बाद ननिहाल आया था। गाँव का सिहद्दा जहाँ गड़ा था, वहीं देवी का मंदिर था। मेरे देखते-देखते यह चबूतरे से मंदिर बना। इस बार फर्क यह था कि दरवाजे की जगह एक लोहे का शटर लगा था। दो-तीन पगडंडियाँ नापने के बाद आबादी पड़ती थी। नाना ने खुशी से भरकर मुझे देखा और कहा कि लगता है कि अब नाती के ब्याह में जल्दी ही आना पड़ेगा। मैं बाजाप्ता लज्जित हुआ और पूछा, 'ट्रांजिस्टर कहाँ है?'

अगले दिन बरीक्षा थी। अत्यंत संक्षिप्त परिचय और रस्म के बाद नाना ने अपने भावी समधी इत्यादि से नाती का परिचय कराया और कहा कि इस बार इनका यहाँ

मन ही नहीं लग रहा है। मैंने शिष्ट प्रतिवाद किया और भारत-पाक युद्ध का जिक्र छेड़ दिया। मेरी जानकारी सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। बातें करते-करते मैंने कहा कि पश्चिमी पाकिस्तान को अगर जीत लें, तो मजा आए। नाना जो अब तक आराम से बैठे हुए सारी बातें सुन रहे थे, मुस्कराकर बोले, 'जीत लें तो क्या मजा आएगा?' बड़ा बेतुका सवाल था, इसलिए एक-दो बार जी-जी करने के बाद मैंने कहा, 'अरे साहब, पाकिस्तानियों के होश ठिकाने आ जाएँगे।' नाना फिर बोले, 'इसमें हमें-तुम्हें क्या फायदा होगा?' इस फायदे वाली बात ने मुझे चकरा दिया। मैंने जवाब दिया, 'क्या हर बात में फायदा-नुकसान देखा जाता है, आखिर देश भी तो कोई चीज है।' बड़े मामा ने मुझे सहारा दिया, 'देशभक्ति तो कोई इस समय इसरायल वालों से सीखे। ऐसा भूसा भरा है, जिसकी कोई मिसाल नहीं।'

नाना कुछ अकेले पड़ने लगे थे। उन्होंने कहा, 'अरे भय्या, हम तो अपने देश को जानते हैं, वैसा ही रहेगा।' समधीजी, जो अब तक केवल हाँ कर रहे थे, बोले, 'बाबूजी, आप ठीक कहते हैं, हिंदुओं में कभी एका नहीं रही।' नाना के माथे पर कुछ सिलवटें पैदा हुई, फिर उन्होंने तिलक और शादी की रस्मों की बात शुरू कर दी।

नाना आजकल कुछ परेशान भी थे। परेशानी का काँटा आज से तीस साल पहले उगा था। नाना के पास कभी नकद पैसा विशेष नहीं रहा। हालाँकि वे हाईस्कूल पास थे, लेकिन उन्होंने नौकरी नहीं की। गुजर भर को खेती होती थी, आम के बाग थे, खाने की कमी नहीं थी, परंतु पैसा न था। बड़े मामा की जब रोडवेज में नौकरी लगी, तो घर में नियमित रूप से नोट आने आरंभ हुए, जो धड़ल्ले से खर्च भी हुए। लेकिन नौकरी के चार बरस बाद बड़े मामा सांघातिक रूप से बीमार पड़े और नतीजतन कलमी आमों का एक पुश्तैनी बगीचा महिबुल्लापुर के पठानों को बेचना पड़ा। जिला अस्पताल में ही यह तय हुआ कि एक तिहाई रुपया बतौर बयाना अभी से ले लें और इस बार की फसल लेने के बाद बेचीनामा तहरीर कर बकाया रुपया लेकर बगिया खरीदारों को दखल करा दी जाएगी। भगवान की दया से मामा जल्दी ठीक हो गए। नाना आमों का झाबा लेकर मामा के अफसर के यहाँ गए और उनसे अपनी टूटी हालत बयान की। अफसर की दयालुता और बड़प्पन के कुछ किस्सों का बखान किया और उनसे यह प्रार्थना की कि मामा को कोई अच्छी जगह दे दें, ताकि बीमारी की भरपाई की जा

सके। अफसर के घर में बावन बीघा पुदीना बोया जाता था और उसके बड़प्पन में कोई शक नहीं था। वह जुबान के सुधरेपन का कायल था और मानता था कि खुशामद का तिरस्कार केवल नासमझ और अकुलीन ही करते हैं। उसने मामा को बहुत अच्छी जगह दी। इसी के साथ नाना की नीयत में फर्क आ गया। आखिरकार बाप-दादा के हाथ का लगाया बाग था। यह विवाद की व्युत्पत्ति थी।

विवाद को दो एंगिलों में देखा जा सकता है -

एंगिल नंबर एक :

कि साहब मेरी संपदा है, घनघोर विपत्ति के समय उसे बेचने के खयाल से मैंने उस पर कुछ कर्जा लिया। अब मैं यह पैसा पूरा का पूरा लौटा रहा हूँ। चाहिए तो कुछ हर्जा-खर्चा ले लीजिए, तो आप क्यों मुझे बेदखल करना चाहते हैं।

एंगिल नंबर दो :

आपकी जरूरत पर मैंने (अल्लाह न करे ऐसी जरूरत किसी को पड़े) पैसा इस शर्त के साथ दिया कि इस फसल के बाद आप बगिया मय तहरीर और बकाया पैसे लेने के बाद मेरे हवाले कर देंगे। बकाया पैसे मैं दे रहा हूँ। आप धोखाधड़ी क्यों कर रहे हैं?

स्पष्ट है कि नुक्ता क्षितिजवासी है, वहाँ जहाँ नीतिशास्त्र और विधिशास्त्र धरती और आकाश की तरह मिलते हैं। गोधूलि क्षेत्र, महाशय सुप्रीमकोर्ट का विषय क्षेत्र। किंतु इसे लेकर कोई मुकदमा लड़ने का विचार किसी पक्ष को न आया। बातचीत चल रही थी कि एक दिन आजिज आकर पठानों ने कह दिया कि, 'मुंशीजी, अब लाठी ही इलाज है।'

नाना इसी वजह से परेशान थे। खुदाबख्श कह रहे थे, 'बाबू परेशान न हों, इनकी ऐसी की तैसी। लाठी हमने भी खूब चलाई है।'

खुदाबख्श नाना के पुराने आसामी थे और बगिया वही रखाते थे। आज वह पूरी तरह से नाना के साथ थे। खुदाबख्श ने नाना का मनोबल बढ़ाते हुए कहा, 'तुम्हारे लड़के

सब अपनी-अपनी जगह सही हैं, जिस राह चलाते हो, चलते हैं। एक हमारे हैं, जो अपने बाप की धोती के पीछे पड़े हैं।'

'क्या मतलब?'

'अब्बू धोती नहीं पहनने का।'

पूरा वाक्य जैसा का तैसा, जो मौलाबख्श ने अपने बाप से कहा था, सामने आया। नाना हतप्रभ हुए, 'अब धोती नहीं पहनना, तो क्या नंगे रहना।'

'नहीं कहता है कि पायजामा पहनों।'

'पायजामा' नाना हँसने लगे। पायजामें में खुदाबख्श एक असंभाव्य बिद्रूप।

'हाँ, कहता है कि धोती हिंदुआनी है। अब बताओ भला धोती पहने-पहने हमारे बाप मर गए और हम भी पहन रहे हैं। न वे हिंदू थे और न हम, तो धोती कैसे उतार दें।

'तुम्हारा लौंडा बंबई जाकर पगला गया है।' नाना सोचने लगे।

आज खबर आई थी कि तीन तरफ से बढ़ रही भारतीय फौजें ढाका से केवल 7 किलोमीटर दूर रह गई हैं और आसमान पर तो अपना राज कब से है। मैं जोश से उतावला हो रहा था और कोई मेरा सहयोगी नहीं था। इस गाँव में राष्ट्रीय चेतना का सरासर अभाव था। केवल मैं था और मेरा ट्रांजिस्टर। मुझे हजार बरस की गुलामी के कारण समझ में आने लगे थे और मैं गिलहरी की तरह कुछ प्रयास करना चाहता था।

मैं चाहता था कि नाना इस मदमाती समाचार-वारुणी का पान करें। ट्रांजिस्टर लेकर मैं उनके पास पहुँचा तो खुदाबख्श को देखकर एक पल ठिठक गया, लेकिन फिर प्याला छलक ही गया। सब सुनने के बाद वह हँसे और बोले, 'आजकल रेडियो पर बहुत बढ़िया प्रोग्राम आ रहा है।'

मैं खिसिया गया और हटने को था कि उन्होंने कहा, 'जाओ, मौला को बुला लाओ।'

मौलाबख्श मुझे अपने घर के सामने उर्दू में कोई चीज पढ़ते हुए मिले। मौलाबख्श निराली वेषभूषा में पेश हुए। पठानी सलवार-कुर्ता और घड़ी। बातचीत उन्होंने बंबइया में शुरू की, तो नाना का माथा ठनका। उन्होंने अवधी में सवाल-जवाब किया। मौलाबख्श पस्त होने लगे और उनकी गाड़ी बंबइया पठार से उतरकर सम पर आ गई। अब नाना उर्दू बोल रहे थे और मौलाबख्श अवधी। नाना के चेहरे पर इत्मिनान झलका।

दो दिन बाद पता लगा कि गाँव में पुलिस आई है और यह कि महिबुल्लापुर के पठानों को बगिया में तलब किया गया है। थानेदार वहीं दरबार करेंगे। नाना ने थाने में इत्तला की थी कि महिबुल्लापुर के फलाँ-फलाँ लोग जबरदस्ती उनकी जायदाद पर कब्जा करना चाह रहे हैं। थानेदार किसी फिरकावारान फसाद की आशंका से ग्रस्त होकर दौड़ा चला आया। वह मुसलमान था, लिहाजा उसके सर का ताज कुछ ज्यादा ही कँटीला था। उसे यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि मामला मजहबी नहीं है। वह नया था, अभी नौजवान भी, इसलिए उसने दोनों फरीकैन के सामने अपनी आशंका और संतोष का इजहार किया। नाना ने अपने दोनों हाथ कान से लगाए और कहा, 'भला आप जैसे थानेदार के रहते ऐसा कैसे हो सकता है। फिर हाकिम के आगे हिंदू-मुसलमान सब बराबर। तभी तो इतनी बड़ी लड़ाई चल रही है और इलाके में सब अमन-चैन है। लेकिन जब यहाँ तक आ ही गए हैं, तो फैसला करके ही जाइए। क्यों घाव रिसता हुआ छोड़ा जाए।'

पठानों ने प्रतिवाद किया, 'किस बात का फैसला। एक तो थानेदार साहब को झूठ-मूठ में यहाँ तक दौड़ाया और ऊपर से उन्हें फैसले में फँसा रहे हैं। अरे, बगिया हमारी है, हमें दो।'

थानेदार अरदब में फँस गया। वाद-प्रतिवाद से माहौल गरमाने लगा, तो वह गरजा, 'मैं फैसला करके जाऊँगा। जब दुश्मन बाहर से हमलावार है, तो घर में पूरी तरह अमन-चैन होना चाहिए।'

पठान भड़के, 'यह जंग की बात कैसे पैदा हो गई। पाकिस्तान की... और आपकी क्या कहें।'

'चोप्प', थानेदार फिर गरजा।

थानेदार ने अपना फैसला सुनाया कि जितना पैसा नाना ने लिया था वह इलाके में प्रचलित सूद की रकम के साथ वापस किया जाए। अब कोई झमेला न खड़ा हो। महिबुल्लापुर वालों के चेहरे क्षोभ के उत्ताप से मलिन और गाढ़े हो रहे थे। उन्होंने रुपया लिया और बिना किसी दुआ-सलाम के चले गए। अब नाना ने हाथ जोड़कर थानेदार से दरवाजे पर चलने का अनुरोध किया। थानेदार ने गुर्राते हुए ना कहा, फिर साथ के अमले के कहने पर मान गया। नाना ने सबके खाने का बढ़िया इंतजाम किया था।

चलते समय उन्होंने नजराना पेश किया। थानेदार ने रुपयों को हाथ नहीं लगाया और रूआब से घुड़ककर कहा, 'दीवानजी को दे दीजिए।'

यह सब मेरी आँखों के सामने घटित हुआ। उस समय मेरा वैचारिक जीवन चरम पर था। मैं घूसखोरी, कालाबाजारी, शोषण इत्यादि शब्दों का घोर विरोधी था और इस विरोध को आदर्श जीवन का अंग मानता था। लेकिन अभी तक इस खेल को मैंने अपनी आँखों से नहीं देखा था। मुझे नाना पर बहुत जोर का गुस्सा आ रहा था। उन्होंने मुझे भ्रष्टाचार का मूक और असहाय साझी बना दिया। उन्होंने भारत-पाक युद्ध यानी एक नेशनल काम को अपने बीघा भर के बाग के लिए इस्तेमाल कर लिया। शब्दों से मेरा परिचय बहुत प्रगाढ़ था और मैं लगातार उनके रोल-माडल तलाश करता था। केहरि-कटि आजानबाहु, पुरुष सिंह, पीनपयोधरा, मृगनयनी, गजगामिनी। नेशनलिस्ट, आइडियालिस्ट कम्युनिस्ट, मारलिस्ट, ह्यूमनिस्ट। आज मामला कुछ उलट गया था। आदमी मेरे सामने बैठा था और उसके लिए मुझे शब्द तलाश करना था। मैंने गहरी डुबकी लगाई। आह! अमारल! हाँ, मारल नहीं, इम्मारल नहीं, अमारल। मैं तृप्त हो गया। समाज के शत्रुओं की मेरी पहचान गहरी और पैनी हो रही थी। मैं अपने शत्रुओं को निःसंग भाव से देख रहा था। बाद में मैंने अपने तमाम मनोयुद्धों में 'नाना' नामक पात्र का प्रयोग किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे यह पात्र दिलचस्प और अवास्तविक होता गया। नाना को मरे आज बारह साल हो गए हैं, लेकिन उनके साथ मैं संवाद सृजित करता रहता हूँ।

कृपया सुनना चाहें,

मैं, 'नाना, मंदिर-मस्जिद वाला मामला बहुत पेचीदा हो गया है। कैसी निर्बुद्धि अंधता है।'

नाना, 'अरे, सब ठीक हो जाएगा। आज नहीं तो कल।'

मैं, 'इसे कल पर नहीं छोड़ा जा सकता।'

नाना, 'क्यों?'

मैं चुप।

नाना उवाच, 'यह तोड़-फोड़ का क्या मतलब है, भाई। जब जो जरूरत हो, उसी में पूरा कर लेना चाहिए।'

मैं, 'प्लीज एक्सप्लेन।'

नाना, 'अरे भाई, मान लेव कि वहाँ पहले मंदिर था तो मुल्ला ने तुड़वाया क्यों। उसी में नमाज पढ़ लेता। और मान लेव कि आज वहाँ मस्जिद बनी है तो तुड़वाने की क्या जरूरत है। उसी में मंदिर खोल लेव।'

मैं, 'आँय।'

नाना, 'और क्या। अब जो वाइसराय हाउस था, उसी में राष्ट्रपति भवन खुल गया था नहीं। और मान लो आगे कभी...।'

मैं, 'सावधान मातामह, आगे एक शब्द भी और कहा तो शीश के शतखंड हो जाएँगे।'

उस दिन जीत की खुशी में नाना ने महुवे की उत्तम और अवैध बोतल खोली। खुदाबख्श बिन पिए रस ले रहे थे। मेरी भी जीत सन्निकट थी। समाचार था कि हमारी फौजें ढाका शहर के बाहरी भाग में पहुँच गई हैं। मैंने नाना से इस बारे में कोई बात नहीं की। कल हम लोगों को तड़के ही घर लौटना है।

मैं घर लौट आया हूँ। महमूद के दादा की अब-तब लगी हुई है। खबरें आ रही हैं कि आज आत्मसमर्पण होगा। मैं व्यग्र हूँ, प्रतीक्षाग्रस्त हूँ। अंततोगत्वा खबर आई कि जनरल नियाजी ने जनरल अरोड़ा के सामने नब्बे हजार सैनिकों के साथ सरेंडर कर दिया है। मेरी आँखें हर्षातिरेक से भर आईं। क्या ही अच्छा होता, यदि इसकी कमेंट्री आ जाती। जरा सुनते तो कि प्रकृति किस प्रकार अपना हर्ष व्यक्त कर रही थी। हमारे लुप्त गौरव की पुनर्प्राप्ति हो गई। हम जीत गए।

दूसरी खबर आई कि महमूद के दादा नहीं रहे। बाबूजी के साथ मैं उसके घर गया। मुझे देखते ही वह और लोगों से अलग हो गया। हम लोग घर से निकल आए और पाकड़ के नीचे मुँह लटकाकर खडे हो गए। महमूद ने जेब से कंघी निकालकर करनी शुरू कर दी। मेरी जेब में कभी कंघी नहीं रहती है, सो मैंने महमूद से माँगी। केशोपचार के बाद महमूद ने कहा, 'इस बार नाना के यहाँ कई दिन रहे। देहात से तुम्हारा मन नहीं ऊबता।'

'ऊबता तो है। लेकिन वहाँ ट्रांजिस्टर था।'

'और क्या खबर है?'

मेरे पास खबर थी, बहुत बड़ी, लेकिन मुरव्वतन चुप रहा।

महमूद ने मुस्कराते हुए मुझे उबारा, 'हिंदुस्तान जीत गया है, तब भी मुँह लटकाए खड़े हो।'

मैं डूबने-सा लगा और कुछ वाक्यों, यथा - 'थका हूँ' और 'जीत क्या हार क्या' आदि को पकड़ने लगा। महमूद पर चुलबुलापन सवार हो गया।

'यार क्या बताएँ बड़े बेमौके दादा अल्लाह मियाँ के पास चले गए, नहीं तो आज तुमसे दावत लेता।'

मुझे मजबूर होकर जवाब देना ही पड़ा, 'क्यों, मैं क्यूँ दावत देता, तुम न देते।'

'हाँ, मैं ही दे देता।'

यह बातचीत मुझे अच्छी नहीं लग रही थी मैंने नितांत निरापद तरीके से मानवीय होने का प्रयास किया।

'यार, अंग्रेजों ने इस देश में बड़ा जहर बोया, भाई-भाई को लड़वाया। हजार साल की गुलामी के बाद अब आजादी मिली है, तो भी वही हाल है।'

महमूद ने मेरे दोनों हाथों को पकड़ा और कहा, 'मेरे भाई, पहले यह तो तय कर लो कि तुम, मैं, हम एक हजार साल गुलाम रहे या तीन सौ साल।'

मैं, '...।'

सर से सन्नाटा झटकते हुए मैंने फिर से कंघी के लिए हाथ बढ़ाया और बालों को सीधे-सपाट खींचते हुए कहा, 'अच्छा छोड़ो यह सब। कहीं खबर देने जाना है।'

'हाँ, जाना तो है, तुरंत चलो। तुम्हारी साइकिल से चलते हैं। मिट्टी आज ही उठनी है।'

'बेटा, चेहरा तो थोड़ा मोहर्रमी बना लो, नहीं तो लोग क्या कहेंगे।'

'अभी लो, दिलीप कुमार को मात किए देता हूँ।' उसने मुक्त होते हुए कहा।